मास्टरजी

जोसेफ श्कवोरेस्की
अनुवादः निर्मल वर्मा

जब मैं तीसरी जमात में गया मेरे पालकों ने मुझे जर्मन सिखाने का निर्णय लिया। हालाँकि, स्कूल में जर्मन चौथी जमात से शुरू होती थी, हमारे घर का यही कायदा था। दूसरी जमात में मैंने लातिन सीखनी शुरू कर दी थी और ड्योढ़े दर्ज़े में फ्रेंच, किन्तु उन दिनों मुझे अँग्रेज़ी सीखने का शौक खाए जा रहा था, इसलिए मैंने फ्रेंच को दरकिनार करके अँग्रेज़ी की प्राइमर खरीद ली और घरवालों से छिपकर अँग्रेज़ी सीखने लगा।

किन्तु जर्मन सीखने के लिए मेरे पिता ने मुझे श्री काट्ज के हवाले कर दिया। श्री काट्ज 'यहुदी गली' के उस घर में रहते थे, जहाँ पहले यहूदी बच्चों का स्कूल था। वे यहूदी-धर्म के अध्यापक और सिनेगॉग (यहूदियों का प्रार्थना-गृह) के पादरी थे। उनका कद ठिगना था और सिर के बाल उड़ गए थे, लेकिन गाने और वायलिन-हारमोनियम बजाने में उनका सानी नहीं था। एक घण्टा पढ़ाने के लिए वे आठ क्राउन लेते थे। इतनी कम रकम मेरे पिता ने कभी दूसरे अध्यापक को नहीं दी थी।

पहले दिन उनके घर जाते हुए मुझे बहुत डर लग रहा था। यहूदियों के स्कूल की पहली मंज़िल पर जहाँ पहले क्लास लगती थी, शीशे का एक पार्टीशन लगा था। वहीं दरवाज़े पर रुककर मैंने घण्टी बजाई। पार्टीशन

के एक तरफ प्रार्थना-गृह था और दूसरी तरफ पादरी का घर। मुझे काफी डर लग रहा था, लेकिन श्री काट्ज का व्यवहार मेरे प्रति स्नेह और सहृदयता से भरा था। वे मुझे अपने साथ रसोईघर में ले गए जहाँ उनकी भारी-भरकम पत्नी पुराना गाउन पहने चूल्हे के पास बैठी थीं। मास्टरजी ने मुझे रसोई की मेज़ के सामने बिठा दिया और फिर मेरे सामने जर्मन की नई प्राइमर खोलकर रख दी। किताब की जिल्द थोड़ी-बहुत फट गई थी और उसके पहले पन्ने पर किसी गोल और गंदी चीज़ की काली-सफेद तस्वीर दिखाई दे रही थी। तस्वीर अण्डे की थी। मास्टरजी ने स्नेहपूर्ण स्वर में मुझे बताया कि अण्डे को जर्मन में 'एइ' कहते हैं। और इस तरह मेरी जर्मन भाषा की पढ़ाई शुरू हुई, बिलकुल शुरू से, यानी अण्डे से।

"दास इस्त एइन एई।" मास्टरजी ने कहा और मैंने यह वाक्य दोहरा दिया।

"क्या यह एक अण्डा है?" मास्टरजी ने पूछा।

और मैंने तुरन्त जवाब दिया, "हाँ, यह एक अण्डा है।" और फिर मैं बराबर उनके वाक्यों को दोहराता गया।

श्री काट्ज सिर्फ जर्मन ही नहीं पढ़ाते थे, बल्कि यहूदी-धर्म के बारे में बहुत-कुछ बताते-सिखाते भी थे। इसके लिए हिब्रू जानना आवश्यक था। यही कारण था कि यहूदी बच्चे अलग से उनके पास हिब्रू सीखने आते थे। यहूदियों में एक प्रथा है कि जब कभी वे ऐसा कोई काम करते हैं, जिसका धर्म से कोई सम्बन्ध हो, प्रार्थना करना, या कोई ऐसा ही काम, तो वे हैट ज़रूर पहनते हैं।

जब मैं अपनी जर्मन कक्षा के लिए समय से कुछ पहले आ जाता, तो देखता कि मास्टरजी के सामने योनाथ लेविथ और इत्ज़ीक खोन बैठे हैं, और ऊँची आवाज़ में किसी अपरिचित भाषा में रहस्यपूर्ण वाक्य दोहरा रहे हैं। वह अपरिचित भाषा हिब्रू थी। अपने सिरों पर वे श्री काट्ज के हैट पहने रहते थे। एक अपना रोज़मर्रा का हैट और दूसरा प्रार्थना का हैट, जो उनके कानों तक खिसक आता था। गर्मी के दिन थे। वे धर्म-पाठ के पीरियड के लिए अपने हैट नहीं लाते थे, अतः मास्टरजी को उन्हें अपने हैट देने पड़ते थे, जो उनके लिए काफी बड़े पड़ते थे। कुर्सियों पर बैठे हुए वे मुझे घमण्ड और हिकारत से देखा करते थे, मानो मुझे बतला रहे हों कि जिस भाषा में वे बोल रहे हैं, उसे मैं नहीं समझता। वे गला फाड़-फाड़कर कुछ चीखते थे, किन्तु मास्टरजी बीच-बीच में टोककर उनकी गलतियों को सुधारते जाते थे, जिससे पता चलता था कि उन्हें भी इस भाषा का अधिक ज्ञान नहीं है। पर मैं तो बिलकुल कोरा था, अतः कम-से-कम मुझ पर हँसने का उन्हें पूरा हक था।

बाद में, जब श्री काट्ज की पुत्री रुथ का विवाह हुआ, तो उन हैटों को

लेकर एक अजीब घटना हुई थी। रुथ का विवाह श्री इसीडोर काफ्का नाम के एक सज्जन से हुआ था। 'ओ' नगर में उनका कॉपियों का छोटा-सा कारखाना था और वे ऑर्थोडॉक्स यहूदी थे। विवाह भी ऑर्थोडॉक्स ढंग से हुआ था। कोलोन शहर के प्रसिद्ध रब्बी को उसके लिए विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। श्री काट्ज का बहुत-से लोगों से अच्छा-खासा मेल-जोल था। सब उनके बारे में यही कहते थे कि वे अच्छे यहूदी हैं...कुछ वैसे ही जैसे मोशेम चुबकालोब के बारे में कहा जाता था कि वे बुरे यहूदी हैं। यही कारण था कि श्री काट्ज की पुत्री के विवाह में न केवल यहूदी आए थे, बल्कि शहर के अनेक ईसाई भी। चूँकि गर्मियों के दिन थे और वे बिना हैट पहने आए थे, इसलिए उन्हें सिनेगॉग में घुसने की इजाज़त नहीं मिली। लोगों को यह बात बहुत बुरी लगी, क्योंकि सभी भीतर जाकर शादी देखना चाहते थे, लेकिन नंगे सिर भीतर जाना मना था। फलस्वरूप, वे बाहर खड़े-खड़े गाली-गलौच करने लगे।

कुछ देर बाद सहसा वहाँ श्री इसाक आइसनर भागते-भागते आ पहुँचे। उनकी पीठ पर दो बड़े-बड़े थैले लटक रहे थे, जिनमें ठसाठस टोपियाँ भरी थीं। ऐसी टोपियाँ, जिनका फैशन मुद्दत पहले खत्म हो चुका था और जो खरीददारों के अभाव में अर्से से उनकी दुकान में सड़ रही थीं। श्री आइसनर उन हरी-पीली धर्मोत्सव जैसी टोपियों को एक-एक क्राउन में लोगों

को उधार देने लगे। कोई टोपी उड़ा न ले जाए, इसलिए वे दस क्राउन पहले से ही डिपॉज़िट के रूप में धरवा लेते थे। कुछ ही देर में सारी टोपियाँ बँट गईं, क्योंकि विवाह की रस्म शुरू हो गई थी और लोग भीतर जाने को उतावले हो रहे थे। इतना समय उनके पास नहीं था कि अपने नाप की टोपी

चुन सकें। जल्दी-जल्दी डिपॉज़िट की रकम देकर जिसके हाथ जो टोपी लगी, उसे पहनकर हर आदमी सिनेगॉग के भीतर दौड़ने लगा। फलस्वरूप, किसी के सिर पर ज़रूरत से बड़ी टोपी थी तो किसी के सिर पर ज़रूरत से छोटी। मेरे पिता हट्टे-कट्टे ऊँचे कद के आदमी थे और उसी के अनुपात में उनका सिर भी काफी बड़ा था। दुर्भाग्यवश उनके सिर पर काफी छोटी, स्लेटी रंग की जोकरनुमा टोपी टिकी थी, जिसे उन्हें बार-बार सम्भालना पड़ता था। उनकी इस दुर्दशा को देखकर मेरी हँसी नहीं रुक सकी। पिता ने मुझे एक थप्पड़ रसीद किया और सिनेगॉग से बाहर निकाल दिया।

श्री काट्ज मुझे हमेशा रसोईघर में पढ़ाया करते थे। उनकी पत्नी चूल्हे के पास बैठकर चुपचाप हमारी पढ़ाई-लिखाई को देखा करती थीं। पढ़ाई के पहले साल उन्होंने कभी मुँह से एक शब्द नहीं निकाला, किन्तु बाद में उनकी खामोशी धीरे-धीरे खत्म हो चली थी। मैं धीरे-धीरे जर्मन बोलने-समझने लगा था। अब हम सिर्फ परियों की कहानियाँ और ऐसी ही दिलचस्प किताबें पढ़ा करते थे। मैं जो कुछ पढ़ता था, उसका सारांश मास्टरजी को सुनाया करता था।

जर्मनों के आने के बाद भी मैं बराबर एक साल तक श्री काट्ज के पास आता रहा था। उन दिनों पढ़ाई के बहाने हम ज़्यादातर राजनीतिक स्थिति के बारे में ही बातचीत किया करते थे। श्रीमती काट्ज अक्सर अपने पति से सहमति जताने के लिए हमारी बातचीत में दखल दिया करती थीं।

श्री काट्ज अपने खास निजी ढंग से मुझे पढ़ाया करते थे, धीरे-धीरे, कायदेवार। मैं बोलता जाता था, अच्छी पुरानी शराब, अच्छी पुरानी शराब को, के, की, अच्छी, पुरानी शराब की, के लिए इत्यादि और बीच-बीच में श्री काट्ज अपना सिर हिला दिया करते थे। इन वाक्यों को दोहराते हुए मेरे मन में पुरानी बढ़िया शराब पीने की तलब उमड़ आया करती थी, जिसे श्री काट्ज कारक-पदों में तो इस्तेमाल किया करते थे, लेकिन शायद खुद कभी नहीं। सम्भव है, वे शराब पीते हों, लेकिन ज़्यादा नहीं। वे काफी गरीब थे।

बाद में जब मुझे अच्छी-खासी जर्मन बोलनी आ गई, वे हमेशा मुझसे कहा करते थे, "दास वासदू कान्स्ट, डेनियल, दास काहन डीर नियेमाण्ड नेहमेन। डाहम लर्न, लर्न ड्योच (यह अनमोल ज्ञान है, डेनियल, कोई इसको तुमसे नहीं छीन सकता...इसलिए जर्मन सीख लो)।"

कभी-कभी वे मुझे प्रथम महायुद्ध के ज़माने में अपनी गरीब-हालत के किस्से सुनाया करते थे। वे अकाल के दिन थे और लोग पैसे देकर भी कोई चीज़ नहीं खरीद पाते थे। श्री काट्ज उस संकटकाल में भी किसानों को जर्मन पढ़ाकर अपना गुज़ारा कर लेते थे।

"और बदले में वे लोग मुझे खाने-पीने का सामान दे दिया करते थे।" मास्टरजी जर्मन में मुझसे कहते, "आटा, मक्खन और कभी-कभी गोश्त भी।" वे हर शब्द पर ज़ोर डालकर धीरे-धीरे बोलते जाते और उन शब्दों को सुनकर मेरे भीतर मक्खन, आटा और गोश्त खाने की लालसा भड़क उठती। हालाँकि, मिठाइयों के अलावा मैं दूसरी चीज़ें बहुत कम खाता था।

श्री काट्ज मुझसे कहते, "डेनियल, तुम्हें सबकुछ मिल सकता है, रुपया-पैसा, सब कुछ...सिर्फ यहाँ कुछ होना चाहिए।" और वे अँगुली से अपने गंजे सिर की ओर इशारा करते... "जो यहाँ है, उसे कोई तुमसे नहीं छीन सकता।" वे कहा करते थे, "अगर नई लड़ाई छिड़ गई तो हमें ज़्यादा तकलीफ नहीं उठानी पड़ेगी। लोग हमेशा जर्मन सीखना चाहेंगे और हम उनसे कहेंगे कि ट्यूशन की फीस पैसों में न देकर वे हमें आटा, मक्खन और गोश्त दे सकते हैं... और दूध भी।" एकाएक उन्हें याद आता और वे तुष्ट भाव से मुस्कुराने लगते।

शुक्रवार की शाम को अक्सर, मास्टरजी मुझे जल्दी छोड़ देते थे और घण्टा खत्म होने के पहले ही मुझे घर जाने की इजाज़त मिल जाती थी। वह उनकी प्रार्थना का दिन होता था। मंगलवार के दिन कुछ अधिक समय पढ़ाकर वे शुक्रवार की क्षतिपूर्ति कर लेते थे।

किन्तु प्रार्थना के दिन घर जाने की बजाय मैं सीढ़ियों के अँधेरे कोटर में छिपकर उन्हें देखा करता था। शीशे के पार्टीशन के पीछे से प्रार्थना-गृह की ओर जाते हुए यहूदियों के चेहरे मुझे दिखाई दे जाते थे, शहर के जाने-पहचाने चेहरे, योनाथ लेविथ के पिता अब्राहम लेविथ, डॉक्टर स्ट्रॉस, श्री ओहरेंजुग, जिनकी कपड़ों की बड़ी दुकान थी, उनका लड़का बेन्नो ओहरेंजुग और कई दूसरे लोग, जिन्हें मैं नहीं जानता था।

कुछ देर बाद प्रार्थना-गृह से गाने की आवाज़ सुनाई देती थी, मास्टरजी श्री काट्ज की आवाज़ और फिर मिली-जुली आवाज़ों का एक बवण्डर-सा ऊपर उठता था और मुझे असम्भव-सा लगता था कि ये सब आवाज़ें श्री लेविथ, श्री ओहरेंजुग या डॉ. स्ट्रॉस जैसे भद्र लोगों की हो सकती हैं। आवाज़ें धीरे-धीरे ऊपर उठती जातीं और उनके बीच सहसा श्री काट्ज का स्वर बहुत शक्तिशाली, अवसादपूर्ण और सुन्दर हो जाता। ये सुनते-सुनते मेरे भीतर एक अजीब, अजानी, भयानक-सी आकांक्षा उमड़ने लगती।

लड़खड़ाते कदमों से मैं सीढ़ियों के अँधेरे कोटर से बाहर निकलकर स्कूल के सामने आ जाता। पहाड़ी पर किले की बुर्जियों पर स्याह-नीला आकाश फैला होता और वहीं एक धुला-धुला-सा सांध्य-तारा आँसू-सा टिमकता हुआ दिखाई दे जाता। शाम के झुटपुटे में घर जाते हुए अक्सर, मुझे गिरजाघरों से आती हुई ऑर्गन

की संगीत-ध्वनि सुनाई दे जाती। यह सुनकर मेरे भीतर एक पागल कर देने वाली उदासी घुमड़ने लगती और मुझे लगता, जैसे मेरे आँसू सहसा फूट पड़ेंगे।

मैं अक्सर सोचा करता कि ये यहूदी लोग इतने विलापपूर्ण स्वर में बार-बार किसे बुलाते हैं, क्यों इतना रोते-चीखते हैं?

एक बार जब मैं पढ़ने के लिए श्री काट्ज के घर आया, प्रार्थना-गृह के दरवाज़े आधे खुले थे। डरते-डरते मैं भीतर चला आया। कमरे में एक लम्बा पर्दा लटक रहा था, जिस पर कसीदे का काम था। खिड़कियों के बीच पैलस्टाइन का एक मानचित्र लगा हुआ था, जिसका शीर्षक हिब्रू में लिखा था।

मुझे अब सिर्फ उस मानचित्र की याद रह गई है, क्योंकि कुछ देर बाद ही बूढ़ा अर्नो क्राउस वहाँ आ टपका। वह प्रार्थना-गृह की सफाई-धुलाई किया करता था। उसने मुझे वहाँ से फौरन बाहर जाने का आदेश दे दिया। सम्भव है, वे पैलस्टाइन को दोबारा पाने के लिए ही रोते-चिल्लाते होंगे, जहाँ मुद्दत पहले उनके पूर्वज रहा करते थे। वह स्कूली मानचित्र काफी अजीब था और उसके पास लटकते हुए उस खूबसूरत कसीदेदार पर्दे को देखकर मुझे एक दूसरे पर्दे की याद हो आई थी, जो कभी बहुत पहले जेरूसलम में फट गया था।

जब श्री काट्ज की पुत्री रुथ का विवाह हुआ, उस समय अनेक किस्म की रस्में और अनुष्ठान सम्पन्न किए गए थे। श्री काट्ज उन दिनों अक्सर, मुझे यहूदियों के धर्म-विश्वास और रीति-रिवाज़ों के बारे में बताया करते थे। एक बार उन्होंने मुझे दरवाज़े के फ्रेम में जड़े एक बिगुल को दिखाया था, जिस पर वैसा ही कत्थई रंग लेपा गया था, जो दरवाज़े का रंग था। उन्होंने मुझे बताया कि इस बिगुल के भीतर एक मोमबत्ती रखी है, जिस पर कुछ धार्मिक मंत्र खुदे हैं। उन्होंने मुझे उन मंत्रों का महत्व भी समझाया था, जो आज मैं भूल चुका हूँ।

एक बार मैंने देखा कि कई दिनों से मास्टरजी ने दाढ़ी नहीं बनाई। बाद में उन्होंने बताया कि ये उनके व्रत के दिन हैं और इन दिनों वे हजामत नहीं बना सकते हैं। एक दूसरे मौके पर उन्होंने कलम या पेंसिल इस्तेमाल करना बन्द कर दिया, क्योंकि उन दिनों हाथ से काम करने पर मनाही थी। उन्होंने मुझे यह भी बताया था कि यहूदियों का सिर्फ एक कानून है और वो है 'पुराना कानून।'

मैं सहसा उनके सामने बहुत धार्मिक बन गया और मैंने बहस करते हुए कहा कि "हम कैथोलिक-धर्म के लोग 'नए कानून' को भी मानते हैं।"

मास्टरजी ने कहा कि वे इसके बारे में जानते हैं, लेकिन वे यीशू को 'मुक्तिदाता' के रूप में स्वीकार नहीं करते।

और मैंने कहा कि "हम कैथोलिक उन्हें 'मुक्तिदाता' के रूप में स्वीकार करते हैं।"

तब हमारे बीच काफी बहस छिड़ गई थी और बाद में मुझे यह सोचकर काफी सन्तोष हुआ कि दुनिया में नाना प्रकार की कितनी दिलचस्प चीज़ें हैं और हर चीज़ एक-दूसरे से भिन्न है।

तीज-त्योहार के मौकों पर मास्टर साहब अक्सर मुझे यहूदियों की विशेष 'डबल रोटी' भेंट में दिया करते थे, जो पार्सल द्वारा किसी कारखाने से उनके पास आती थी। इस रोटी को प्रायः मेरे पिता खाया करते थे, क्योंकि खाने के मामले में वे कभी कोई परहेज़-पर्दा नहीं करते थे। मास्टरजी कहा करते थे कि यहूदियों की यह रोटी पेट के रोगियों के लिए बहुत लाभदायक है, क्योंकि उसे सिर्फ आटे और पानी से बनाया जाता है।

विवाह से एक दिन पहले रुथ को कुछ औरतों के साथ एक अलग कमरे में बन्द कर दिया गया था। वहाँ दुल्हन के हर अंग को अच्छी तरह से धोया गया, उसे नहलाया गया और शायद उसकी देह पर सुगन्धित तेल की मालिश भी की गई...लेकिन इसके बारे में मैं निश्चित नहीं हूँ। सम्भव है, तेल-मालिश की प्रथा कैथोलिक-धर्म में है और मैं उसे यहाँ गलती से याद कर बैठा हूँ। खैर, जो भी हो, इस ख्याल से ही मैं बहुत अजीब ढंग से उत्तेजित हो गया था कि कैसे निर्वस्त्र, सफेद रुथ नहाने के टब से बाहर निकली होगी और कैसे यहूदी स्त्रियों ने उसकी देह को सुगन्धित तेल से मला-मसला होगा। आज भी उसका यह चित्र मुझे एक गोपनीय, सुन्दर और बहुत ही पवित्र ढंग से उत्तेजित कर देता है।

रुथ सचमुच कुँवारी लड़की थी और उसके होने वाले पति इसीडोर काफ्का भी निश्चित रूप-से कुँवारे थे। हालाँकि देखने में काफी खराब थे, खाते-पीते आदमी थे, किन्तु बहुत ज़्यादा धनी नहीं थे।

अपनी खास 'यहूदी रोटी' के बारे में मास्टर श्री काट्ज बहुत रस लेकर बोला करते थे। उन्हें डायबिटीज़ की बीमारी थी। मिठाइयाँ, पेस्ट्री तथा वे सब चीज़ें खाने की उन्हें मनाही थी, जो डायबिटीज़ के मरीज़ नहीं खाते। मुझे उनकी यह बीमारी काफी दिलचस्प और आकर्षक जान पड़ती थी और कभी-कभी उनसे ईर्ष्या भी होती थी कि वे सब कुछ नहीं खा सकते, जबकि मैं सब कुछ खा सकता हूँ – किन्तु सिवाय मिठाइयों के मुझे कोई चीज़ अच्छी नहीं लगती थी।

इस बीच, एक बार मैं बीमार पड़ गया और मुझे अजीब तरह की पेशाब आने लगी। डॉ. स्ट्रॉस ने कहा कि मेरा गुर्दा खराब है और मेरे लिए पथ्य निर्दिष्ट कर दिया, किन्तु यह पथ्य श्री काट्ज के पथ्य से बिलकुल उलटा था।

"क्या?" श्री काट्ज ने आतंकित स्वर में मुझसे पूछा, "क्या तुम्हें गोश्त

खाने की मनाही है, डेनियल? अच्छा, चरबी भी नहीं खा सकते?" मुझे लगा सहसा वे बहुत गमगीन-से हो गए हैं और किसी चीज़ के बारे में कुछ सोचने लगे हैं।

मुझे इस बात पर बहुत गर्व था, मैं भी मरीज़ हूँ और मेरा भी एक खास पथ्य है। मैंने सोचा था कि इसके बारे में मैं मास्टरजी से डींग मारूँगा, किन्तु श्री काट्ज का चेहरा बहुत पीला पड़ गया था।

अचानक उन्होंने काँपते स्वर में मुझसे कहा, "डेनियल, अगर किसी आदमी को डायबिटीज़ हो और साथ में गुर्दे की बीमारी भी, तो वह बेचारा क्या खाएगा। वह तो सचमुच भूख से मर जाएगा।"

शादी के नौ महीने बाद मास्टरजी की लड़की ने एक छोटी-सी बच्ची को जन्म दिया। बच्ची का नाम था हाना। मास्टरजी खुशी से फूले नहीं समाते थे और बराबर बच्ची के बारे में बातें किया करते थे। कहा करते थे कि बच्ची सचमुच बहुत खूबसूरत है और उसके बाल अप्सराओं की तरह हैं...वाइ आइन एंगलखेन (एंजिल की तरह)।

एक बार वे विशेष रूप से प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। मुझसे बोले कि वे अभी-अभी अपनी लड़की की ससुराल से लौटकर आ रहे हैं। उन्होंने अपनी मेज़ की दराज़ से एक मोटी-सी किताब निकाली, जिसकी जिल्द उलटी बँधी थी...यही कारण था कि उसका आरम्भ अन्त में था। मुझे किताब दिखाते हुए बोले, "यह मैंने हाना के लिए सम्भाल-कर रखी है...एक दिन उसे इसकी ज़रूरत पड़ेगी।" वह बच्चों को हिब्रू हिज्जे सिखाने की प्राइमर थी, जिसे पढ़कर वह भाषा सीखी जा सकती थी जिसमें यहूदियों की बाइबिल लिखी थी। मुझे लगता है, वे उसे बाइबिल नहीं कहते। उस प्राइमर में अण्डों, बिल्लियों, कुत्तों और पुराने फैशन के कपड़े पहने हुए लड़कों की तस्वीरें थीं, बिलकुल हमारी चेक भाषा की प्राइमर की तरह।

मैंने किताब की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए जर्मन में कहा, "हाना, दास इस्त आइन शोनर नामे!" (कितना खूबसूरत नाम है, हाना!)।

मास्टरजी मेरे इस वाक्य को सुनकर और भी अधिक प्रसन्न हो गए।

* * *

बाद में हमारे शहर पर हिटलर का अधिकार हो गया और यहूदियों के खिलाफ कानून जारी हो गए। मैं उन दिनों भी बेनागा श्री काट्ज के घर जाता था, हालाँकि अब मुझे इसकी ज़रूरत नहीं थी, क्योंकि मैं जर्मन अच्छी तरह पढ़ना-लिखना सीख गया था। हमने परी-कथाएँ और कहानियों की किताबें पढ़ना बन्द कर दिया था और अब हम राजनीति...सिर्फ राजनीति के बारे में बातचीत किया करते थे। मैं जी भरकर हिटलर और जर्मनों को गालियाँ दिया करता था और मास्टरजी

शिकायत-भरे लहज़े में बड़बड़ाते रहते थे। चूल्हे के पास बैठी हुई मास्टरनीजी भी शोक-भरे स्वर में कुछ-न-कुछ कहती रहतीं और मैं गुस्से में आकर हिटलर को कोसने लगता। हालाँकि, उन दिनों मुझे ठीक-ठीक कुछ भी मालूम नहीं था कि हिटलर नाम का आदमी असल में चाहता क्या है।

"आह...हम यहूदियों को क्या-कुछ नहीं सहना पड़ा है!" मास्टरजी कहते और मुझे लगता कि यह बात वे मुझसे नहीं, आकाश में किसी से कह रहे हैं।

जब मैं घर लौटता, रास्ते में धार्मिक-जुलूसों के आगे ब्लैक-बोर्ड पर मुझे उन यहूदियों के नाम दिखाई दे जाते, जो अपना धर्म छोड़ रहे हैं।

किसी अनाम व्यक्ति ने स्थानीय अखबार 'आर्यों का संघर्ष' में एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें लिखा था कि 'के' शहर में अमुक बैंक के डायरेक्टर अपने लड़के को जर्मन सिखाने के लिए यहूदियों के सिनेगॉग के पादरी अडोल्फ काट्ज के पास भेजते हैं। मेरे पिता इस लेख को पढ़कर गुस्से से भड़क उठे, लेकिन फिर बेबस होकर बैठ गए और उस दिन से मैंने श्री काट्ज के घर जाना छोड़ दिया। उस दिन से पिताजी की भी 'गिरावट' शुरू हो गई। लोगों में यह खबर घर कर गई कि वे यहूदियों को चाहते हैं। मेरे पिता गुस्से में भुनभुनाते रहते, लोगों को गालियाँ देते। एक बार अचानक आधी रात को किसी ने हमारे घर का दरवाज़ा खटखटाया और वे मेरे पिता को ज़बरदस्ती बाहर ले गए...उन्हें इतना समय भी नहीं मिल सका कि अच्छी तरह अपने कपड़े बदल सकें। उसके बाद मैं उन्हें हमेशा खाकी पतलून पहने देखता... हमेशा खीजे और झुँझलाए से घर में घूमते रहते और कभी-कभी मुझे यूँ ही खामख्वाह चाँटा लगा देते अथवा धारीदार कमीज़ और शिकारियों का हैट पहनकर दादाजी के साथ बाहर निकल पड़ते। ईश्वर ही जानता है कि उन दिनों भी वे लोगों को गालियाँ देते थे या नहीं...शायद देते हों, यह उनका स्वभाव था, लेकिन हमने इसके बाद कुछ और नहीं सुना।

अखबार में उस लेख को प्रकाशित हुए लगभग तीन सप्ताह गुज़र चुके थे। एक दिन बिलकुल अप्रत्याशित रूप से मुझे मास्टरजी, श्री काट्ज घर की तरफ आते हुए दिखाई दिए। उन्होंने काला ओवरकोट पहन रखा था, जिसकी कॉलर तेल और धूल से काफी गंदी और पुरानी पड़ गई थी। उन्होंने घण्टी बजाई, हॉल में कुछ देर ठिठके, फिर भीतर चले आए। कमरे में वे ओवरकोट पहने ही कुर्सी पर बैठ गए और बड़े विनीत और शान्त-भाव से मुस्कुराने लगे। "क्या बात है, डेनियल?" उन्होंने जर्मन में मुझसे पूछा, "इतने दिन से तुम दिखाई नहीं दिए। मैंने सोचा, शायद तुम बीमार पड़ गए हो।"

मेरा चेहरा लाल हो गया।

"मास्टरजी," मैंने कहा, "अब मैं आपके पास नहीं आ सकूँगा।"

"नहीं आ सकोगे?" उन्होंने तनिक आश्चर्य से मेरी ओर देखा, "लेकिन क्यों?"

"मैं...," इससे पहले मैं कुछ कहता, मेरे पिता कमरे में चले आए। उनका चेहरा लज्जारक्त हो आया था। उन्होंने मुझे बाहर भेज दिया और स्वयं मास्टरजी के पास आकर बैठ गए। वे देर तक कमरे में मास्टरजी के साथ बातचीत करते रहे। फिर कमरे के बाहर मास्टरजी दिखाई दिए और उनके पीछे-पीछे पिताजी। मास्टरजी का गंजा सिर नीचे झुका था और चेहरे पर लम्बी, कोमल, यहूदी नाक बाहर की तरफ निकल आई थी।

उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और हमेशा की तरह जर्मन में कहा, "ऑल्सो, आउफ वाइडर सेहन, डेनियल!" (अच्छा, डेनियल गुड बाय!)

मैंने उत्तर में कहा, "आउफ वाइडर सेहन, हरा लेहरर!" (गुड बाय, मास्टर साहब!)

जब हमारे घर का दरवाज़ा मास्टरजी और उनके काले ओवरकोट के पीछे बन्द हो गया, तो मैं अपने कमरे में आकर रोने लगा। पिताजी का चेहरा भी आँसुओं से भीगा था, किन्तु कुछ ही देर में उनकी पुरानी झुँझलाहट वापस लौट आई और वे मेरी छोटी बहन हान्का को डाँटने लगे कि वह पियानो पर प्रैक्टिस क्यों नहीं कर रही।

उसके बाद मैंने श्री काट्ज को लम्बे अर्से तक नहीं देखा। इस बीच यहूदियों को 'सितारा' लगाने का हुक्म मिल चुका था (फासिस्ट कानून के अनुसार हर यहूदी को अपने कोट पर सितारानुमा बिल्ला लगाने की आज्ञा मिली थी, ताकि उसे दूसरों से अलग करके पहचाना जा सके)। एक दिन शहर के चौराहे पर मेरी मुलाकात श्री ब्लादीक से हुई। वे हमारे बैंक के मैनेजर थे और जब पिताजी को कॉन्सेन्ट्रेशन कैम्प (जहाँ लगभग सब बूढ़े, जवान यहूदियों को गैस-चैम्बर में खत्म कर दिया जाता था) में बन्द कर दिया गया तो वे उनकी जगह पर बैंक के डायरेक्टर बन गए थे। चौराहे पर रुककर वे मुझसे कुछ बात करने लगे। दूसरी तरफ नुक्कड़ पर अखबारों की दुकान थी। सहसा मुझे दुकान से मास्टरजी श्री काट्ज बाहर निकलते दिखाई दिए। उनके हाथ में एक पिक्चर-पोस्टकार्ड था और काले ओवरकोट पर पीला 'सितारा' टँगा था। मुझे देखकर उनके चेहरे पर सहृदय मुस्कान खिल गई। खुशी की झोंक में शायद वे अपने सितारे वगैरह को भूल गए। मेरे पास आकर प्रसन्नता से बोले, "गुड मॉर्निंग, डेनियल! बहुत दिनों से दिखाई नहीं दिए। कहाँ रहे?"

मैंने किंचित् असमंजस में उनके अभिवादन का उत्तर दिया। मुझे भी उन्हें देखकर बहुत खुशी हुई थी...वे वैसे ही थे, जैसा मैं उन्हें देखता आया था।

"गुड मॉर्निंग, मास्टर साहब! आप

कैसे हैं?" मैंने कहा।

सहसा मैंने अपने पीछे हल्की-सी सरसराहट सुनी। पीछे मुड़कर देखा...श्री ब्लादीक हमसे हटकर लम्बे-लम्बे डग भरते हुए चौराहे को पार कर रहे थे और उनकी बरसाती हवा में उड़ती हुई सरसरा उठती थी। अचानक मेरा दिल गुस्से से भड़क उठा। मैं मास्टरजी की तरफ मुड़ा और मैंने उनसे कहा कि मैं उन्हें घर तक पहुँचा आता हूँ।

सब लोगों के सामने खुले चौराहे पर मैं मास्टरजी के साथ चलने लगा। मास्टरजी भी अपने आस-पास की स्थिति को भूल गए और हम मज़े से हिटलर, लड़ाई, डायबिटीज़ और उनकी पोती हाना के बारे में बातें करते हुए चलने लगे। उन्होंने मुझे बताया कि हाना अब तीन बरस की हो गई है और अच्छी तरह बोल लेती है।

बहुत-से लोगों ने हमें एक-दूसरे के साथ देखा था। सम्भव है, पिताजी को इसके लिए कहीं अतिरिक्त कष्ट भोगना पड़ा, किन्तु इसकी मुझे उस दिन परवाह नहीं थी, क्योंकि मास्टरजी मुझे अच्छे लगते थे।

बाद में बहुत-सी दवाइयों पर रोक लगा दी गई और नए कानून के मुताबिक उन दवाइयों को यहूदियों को नहीं बेचा जा सकता था। इन्सुलिन भी उनमें शामिल थी। उस दिन मैं किसी काम से केमिस्ट की दुकान में था और वहाँ अपने मित्र ब्लादा नोसाल से बातचीत कर रहा था। उसी समय श्री काट्ज इन्सुलिन खरीदने दुकान में आ पहुँचे। वे अब तक इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि इन्सुलिन उन दवाइयों में से है, जिसे यहूदियों को नहीं बेचा जा सकता। मैं लेबोरेट्री में अपने मित्र के साथ खड़ा था और बोतलों-शीशियों के बीच उनके काले ओवरकोट को देख रहा था।

मेरी नज़र काउण्टर के पीछे खड़े केमिस्ट श्री हैंस पर भी आ पड़ी। उन्होंने झिझकते हुए मास्टरजी की ओर नज़रें उठाईं, धीरे-से खाँसे और फिर पूछा, "इन्सुलिन?"

"हाँ...उतनी ही, जितनी पहले दी थी।" मास्टरजी ने कहा।

केमिस्ट मास्टरजी से कुछ कहना चाहता था, किन्तु असल में उसने जो कहा, वह कुछ अलग था। उसने मास्टरजी से कहा कि इस हफ्ते दवाइयों का पार्सल नहीं आया।

"अच्छा...कब आएगा?" मास्टरजी ने तनिक आतंकपूर्ण स्वर में पूछा।

केमिस्ट का चेहरा लज्जारक्त हो उठा, कुछ उसी तरह जैसे मास्टरजी से अन्तिम मुलाकात के वक्त मेरे पिता का चेहरा लाल हो उठा था।

"ज़रा ठहरिए," केमिस्ट ने काउण्टर के नीचे से एक पैकेट बाहर निकाला, "यह अस्पताल के लिए था, लेकिन आप ले जा सकते हैं। जब पार्सल आएगा तो आपका हिस्सा मैं इसके बदले रख छोड़ूँगा।"

श्री काट्ज ने धन्यवाद दिया और

पैकेट उठाकर बाहर चले गए।

केमिस्ट हैंस हमारे पास लैब में आए। उनका चेहरा अब भी लाल था। उन्होंने ब्लादा से कहा कि वह अमुक स्त्री के नाम पर इन्सुलिन का कार्ड तैयार कर दे, ताकि श्री काट्ज को नियमित रूप से इन्सुलिन दी जा सके, "लेकिन ज़रा होशियारी से... दुकान में लोगों के सामने नहीं।"

फिर एक दिन यह ऑर्डर आया कि शहर के सब यहूदियों को रेलगाड़ी में भरकर कहीं बाहर भेजा जाएगा। उन्हें सुबह जाना था। मैं उस दिन तड़के ही उठ बैठा और स्टेशन की ओर चल पड़ा। रात भर मैं मास्टरजी के बारे में ही सोचता रहा।

वह पतझड़ का गमगीन, मटमैला-सा दिन था। हवा में कड़कती सर्दी थी। स्टेशन के सामने यहूदियों की लम्बी कतार लगी थी। हाथों में सन्दूक और बण्डल लटकाए वे चुपचाप खड़े थे।

मैं 'स्टार' होटल के पीछे छिपकर खड़ा हो गया, ताकि वे मुझे न देख सकें। एक जर्मन सिपाही वहाँ खड़ा था। उस लम्बी कतार में मेरी आँखें श्री काट्ज को ढूँढ़ रही थीं। बहुत-से जाने-पहचाने चेहरे मुझे वहाँ दिखाई दे रहे थे...डॉ. स्ट्रॉस, सारा एबल्स, जो गोद में अपने बच्चों को लिए खड़ी थीं, लिओ फेल्ड, श्री लेविथ इत्यादि।

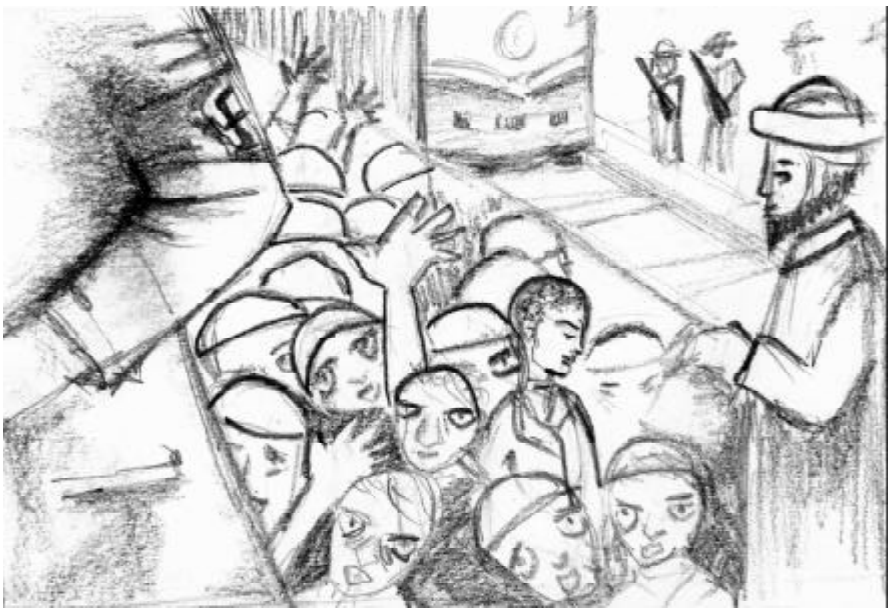

अचानक मुझे काले ओवरकोट में मास्टर श्री काट्ज दिखाई दिए। उनके पास भारी-भरकम मास्टरनीजी के बदसूरत दामाद श्री इसीडोर काफ्का खड़े थे। उनका हाथ एक पीले चेहरेवाली, छोटी-सी बच्ची ने पकड़ रखा था, जिसकी टाँगों पर मैली जुराबें चढ़ी थीं। वह हाना थी। मैंने उसे उस दिन पहली बार देखा था।

कुछ देर बाद उस जर्मन सिपाही ने अपनी ऊँची, चीखती आवाज़ में कुछ कहा। कतार हिलने लगी। मास्टरजी ने ज़मीन से रस्सी में बँधी पोटली उठाई और दूसरों के साथ धीरे-धीरे स्टेशन की तरफ चलने लगे।

जोसेफ श्कवोरेस्की - चेक भाषा के प्रसिद्ध लेखक। उनके प्रथम उपन्यास 'कायर' (1958) के इर्द-गिर्द एक बवण्डर-सा खड़ा हो गया था। सरकार ने उस पर पाबन्दी लगा दी थी क्योंकि उसमें 1945 की क्रान्ति के बारे में अनेक 'भ्रान्तिमूलक और गलत' धारणाएँ प्रस्तुत की गई थीं। 'कायर' के बाद उनका एक लघु उपन्यास 'एमेके : एक गाथा' और दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

चेक से अनुवाद - निर्मल वर्मा (3 अप्रैल 1929 - 25 अक्टूबर 2005) - प्रख्यात कथाकार एवं निबन्धकार थे। अनेक महत्वपूर्ण चेक और अँग्रेज़ी भाषा की कृतियों का हिन्दी में अनुवाद किया है। भारतीय और पाश्चात्य संस्कृतियों के स्कॉलर रहे हैं।

यह कहानी 'प्राग-वर्ष, एमेके तथा अन्य चेक कहानियाँ' पुस्तक से ली गई है। प्रकाशकः राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2003।

सभी चित्र - ग्रीष्मा शर्मा - दिल्ली पब्लिक स्कूल, भोपाल में विज्ञान पढ़ाती हैं। जेनेटिक्स में स्नातकोत्तर। चित्रकारी में गहरी रुचि।